 ISSN : 3049-3463 (Online)

संत काव्य परम्परा में संत कवि रैदास का स्थान

✍ डॉ. मुकेश कुमार राम
सहायक प्राध्यापक
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा

संत काव्य को सामाजिक जन चेतना का प्रतिक कहा जा सकता है। संत काव्य शास्त्रीय काव्य परम्परा से भले ही दूर हो रहा हो किन्तु अपने समय की माँग एवं जरुरत को पूरा करने का दायित्व इसमें सहर्ष अपने कन्धों पर उठाया। राजनीती, धर्म, और समाज के क्षेत्र में जो तात्कालिक समस्यायें थी जिनसे पूरा समाज त्रस्त हो रहा था, खासकर पिछड़े एवं दलित समुदाय, उनकी जरूरतों को ध्यान में रखकर संत समाज ने भक्ति के क्षेत्र में जो आंदोलन चलाया वह आगे चलकर उनके उज्जवल भविष्य के लिए अवश्य संभावी सिद्ध हुआ।

संत समाज कोई उत्सव धर्मी समाज न था। यह समाज सदियों से प्रताड़ित, करुणा विगलित और उत्पीड़ित समाज था। अपने तन छिपाने के अलावा इनके पास कुछ न था। न सिर छिपाने को घर न जीविका के लिए कोई धन और सम्पति। सामाजिक दुराग्रह जातीय बंधन एवं सामाजिक कुरीतियों के शिकार यह समाज पूरी तरह से बंचित समाज था। इसी बंचित समाज से आकर संतों ने अपनी उप स्थिति का बिगुल फूंका था। उनकी सस्वर वाणी से दिशाएँ कांप उठी थी, शांत पड़े जल में हिलोरें उठी थी और एक सोया हुआ समाज जागा था। कवियों का इस तरह, समाज में दस्तक देना कोई अनहोनी या कोई बड़ी क्रांति न थी। किन्तु एक बड़ा प्रश्न जरूर था, जिसका उत्तर खोजे जाना अब भी बाकी है। संत कवियों ने पहली बार समवेत स्वर में अपने समाज से प्रश्न किया था जिनका उत्तर देना बड़े–बड़े महारथियों का निरुत्तर कर रहा था। हिन्दू धर्म ने जिस प्रकार निम्न जातियों को अपने नियमों एवं उप नियमों में बाँट रखा था वहाँ उनकी उपस्थिति की कीड़ों–मकोड़ों से अधिक न थी। समाज के जितने भी आग्रह्य कार्य थे। विनिम्न जातियों के लिए अधिकृत थे, न करने पर धनद का विधान था। उनका रहन–सहन, खाना–पीना, उठना– बैठना, सब महाप्रभुवों के इशारे से ही तय होता था, उनकी जिंदगी जानवरों से भी बदत्तर थी। यह था हमारा हिन्दू वर्णवादी समाज का सच जिसे संत कवियों ने अपने ललकार से चुनौती देने का काम किया था।

"ब्राह्मण हिन्दू धर्म अंत के अधिष्ठाता थे। उन्होंने निर्बल, भयभीत, असहाय हिन्द जन के धर्म पलायन को रोकने के लिए हिन्दू धर्म के व्यापक स्वरूप को संकुचित तथा कड़े नियमों में बांधने का काम किया। इस तरह कर्मकाण्डो एवं आडम्बरों का आविर्भाव हुआ। शेखों और ब्राह्मणो में होड़ लगी थी। एक हड़पना चाहता था दूसरा आत्म रक्षा के लिए अपने क्षेत्र को कड़े से कड़े नियमों में बाँधकर संकुचित कर रहा था। हिन्दू धर्म की परिधि इतनी छोटी हो गयी थी कि जन साधारण के लिए उसके द्वार बंद होते

 ISSN : 3049-3463 (Online)

चल रहे थे। मानवीय गुणों तथा धर्म के सार्थक रूप की अपेक्षा लकीर पीटना ही धर्म की पहचान रह गयी थी। हिन्दू धर्म के इस संकीर्ण परिधि में हिन्दुओं के बड़े समूह का प्रवेश निषिद्ध हो गया। समाज के भीतर ही धर्म और मर्यादा की आड़ में शोषण और उत्पीड़न का दौर चलता रहा। संत कवियों ने ऐसे अंधकार काल में अपनी वाणी के द्वारा जन–साधारण को जगाने का काम किया तत्कालीन दकियानूसी व्यवस्था से क्षुब्ध एवम प्रताड़ित जन–साधारण ने एक स्वर में संत कवियों का समर्थन किया। इस प्रकार धर्म और समाज के क्षेत्र में एक नविन चेतना का प्रादुर्भाव हुआ।"

इस समय मुल्ला और ब्राह्मण अपनी धार्मिक दांव–पेंच की गोटियां खेल रहे थे। ऐसा कहकर वे दोनों समुदायों के प्रति द्वेष और इर्ष्या की भावना को बढ़ा रहे थे। इस प्रकार दोनों समुदाय को आपस में लड़वाकर समाज के विकास का मार्ग अवरुद्ध कर रहे थे और समूची मानव जाति को अंधेरे के गर्त में धकेलने का कार्य कर रहे थे। अछूतों का समाज में बड़ी बुरी दशा थी। उनका मंदिरों में प्रवेश निषिद्ध था। सामाजिक रूप से बहिष्कृत और गुलामों से भी बदतर जिंदगी थी उनकी। छुआछूत का भेद इतना था कि जिस रस्ते से सभ्यजन गुजरते थे उस रास्ते पर उन्हें चलना भी मना था। शिक्षा, चिकित्सा एवं कारोबार से वंचित उनकी एक अलग ही दुनिया थी, जहाँ सिर्फ अंधकार था।

इस्लाम के आगमन के बाद भारत में सामाजिक रूप से नयी परिस्थितियाँ पैदा हुयी। बारहवीं शताब्दी तक भारत में मुसलमानों का राज्य कायम हो चूका था। सन 1186 ई० में शहाबुद्दीन गोरी ने हिन्दू राजा पृथ्वीराज चौहान पर विजय प्राप्त कर एक प्रकार से हिन्दुओं के गर्व को चूर कर चूका था। पृथ्वीराज चौहान की पराजय के साथ दिल्ली के तख्त पर शहाबुद्दीन गोरी का अधिकार हो गया। उस समय के हिन्दू राजा अपने जातीय अभिमान में चूर समय की नजाकत को समझ नहीं सके और उन्हें मुँह की कहानी पड़ी। शहाबुद्दीन ऐबक बड़ा ही कटटर मुसलमान बनाया और जो न माने उन्हें मौत की नींद सुला दिया। कहा जाता है उसके एक सरदार मुहम्मद बिन बख्तियार ने बिहार के पाल राजा को पराजित कर वहाँ के तमाम हिन्दुओं और बौद्धों को काटकर जमीन पर लाशें बिछा दी। उनके द्वारा संरक्षित नालन्दा विश्विद्यालय को जला डाला था। भयभीत हिन्दुओं और बौद्धों को नेपाल में भागकर शरण लेनी पड़ी थी।

इस तरह से मध्य काल का ऐतिहासिक समय खून–खराबा से भरा है। राजनितिक के खेल में राजाओं और सत्ताधीशों के कारनामे सभ्य समाज के मुँह पर तमाचा है। अफगान बादशाहों की क्रूरता की कहानियाँ तो अंतहीन थी ही किसी का हाथ काट लेना, किसी का आँख निकलवा लेना तो किसी को हांथी से कुचलना देना। उनके क्रूर दण्ड विधान से इतिहास के पन्ने भरे हैं। उनका एक ही मकशद था भरपूर खजाने लूटकर राजखाने की वृद्धि करना और अपना साम्रज्य बढ़ाना चौदहवीं शताब्दी तक आते–जाते इन आक्रमणकारी राजाओं की धनलोलुपता एवं साम्रज्य बढ़ाने की आकांक्षा दम तोड़ने लगी। क्योंकि कुछ हिन्दू राजा संगठित होकर लड़ने लगे थे तो कुछ ले–देकर समझौता करने लगे थे। इसका फल यह हुआ कि अभी तक जिन मुस्लिम राजाओं की लड़ाई हिन्दू राजाओं एवं हिन्दू धर्म से थी। व्यक्तिगत अधिकारों के लेकर आपस में अफगान शक्ति कमजोर होती चली गयी और वे बिखर गए।

फिर मुगलवंश के आक्रमण एवं शासन का आरम्भ हुआ। इसमें बाबर से लेकर औरंगजेब तक कई शासक हुये। पर इनमे कुछ को छोड़कर प्रायः सभी शासक कटटर मुस्लमान थे। मुग़ल शासक अपने साम्राज्य विस्तार एवं धर्म विस्तार के नशे में अपने भाईयों एवं बच्चों तक का कत्ल कर दिया।

कहा जाता है कि अकबर एवं जहांगीर का शासन कल बड़ा अच्छा था। लेकिन इन शासकों के समय में गरीब लोगों के लिए रोटी तक मयस्सर नहीं थी। उनका न तो कोई वर्तमान था और न कोई भविष्य। हिन्दुओं के लिए जजिया कर अनिवार्य था। मुसलमान जागीरदार गरीब किसानों एवं मेहनतकश मजदूरों से जबरन कर वसूलते थे। उस समय के कविओं ने समाज की दरिद्रता और आम जनता की पीड़ा को बड़े मार्मिक शब्दों में ब्यक्त किया है :—

'जीविका विहीन लोग सिद्धमान सोचवस।
कहैं एकन सों कहाँ जाई का करी।।'

कवितावली— तुलसी दास, उत्तरकांड , छन्द— 97

मुसलमानों के बढ़ते हुए आतंक ने जनता के साथ साहित्य को भी बड़ा अस्थिर किया मुसलमानी शक्ति और साम्राज्य ने साहित्य का दृष्टिकोण हु बदल दिया। चारणकालीन रचनाये धीरे—धीरे जीवन दर्शन एवं ईश्वर भक्ति में बदल रही थी। राजपूत लोग कभी अकेले तो कभी संगठित होकर मुसलमानों से लोहा लेते थे, स्त्रियां जौहर करती थी, किन्तु मुस्लमान शासक इससे अप्रभावित रहे।

"संतों ने यह महसूस किया कि इन विधर्मी शासकों की क्रूरता, अपरिमित शक्ति एवं नृशंसता का मुकाबला नहीं किया जा सकता। अतः संतों ने इस मुकाबले के लिए एक अलग मार्ग पकड़ा। इस्लाम के बढ़ते प्रभाव और उसके मूर्ति पूजा विरोध तथा एकेश्वरवाद के समकक्ष संतों ने जिस मत, सिद्धांत एवं जीवन पद्धति का अनुसरण किया, वह तत्कालीन परिस्थितियां एवं सन्दर्भों में सर्वथा अनुकूल एवं मौंज था। कहना न होगा कि इन संतों ने हिन्दू धर्मों के मूल सिद्धांतों को मुसलमानी धर्म के मूल सिद्धांतों से जोड़कर एक नये पंथ की कल्पना की जिसमे ईश्वर एक था। वह निर्गुण निराकार था, जो मंदिर मस्जिद में नहीं अपितु कण—कण में समाया हुआ था। संतों में जो एकेश्वरवाद के प्रति जो आस्था दिखलाई देती है, वह मुस्लिम प्रभाव है।"

मार्क्सवाद का यह सिद्धांत की संघर्ष से ही विकास होता है। यदि मुसलमानों ने भारत पर विजय का सपना ना देखा होता तो आज हिंदी भाषा का स्वरूप ही कुछ और होता। फिर चरणों जैसी परंपरा रह गयी होती। दरअसल संतों की वाणी में निहित संघर्ष, आक्रोश एवं प्रेरणा की जो अनगूंज है वह उनके भोगे हुए यथार्थ की प्रतिक्रिया है। मुस्लमान शसकों के हाथी के पैरों तले कुचलवाने जैसे क्रूर अत्याचार की पीड़ा ही संतों की वाणी है।

संत साहित्य और लोक मंगल—ओम प्रकाश त्रिपाठी लोक भारती प्रकाशन, पृष्ट— 51

संत समाज वही कुचले जाने वाली सामाजिक व्यवस्था के उपज थे। समाज में सबसे निचले पायदान पर रहने वाले अन्त्यज या शूद्र कहा जाने वाला वर्ग इस नविन एवं परिवर्तनकारी पंत की ओर आकृ

ISSN : 3049-3463 (Online)

ष्ट हुआ। एक ओर अपने ही देश में कुलीन वर्ग के द्वारा दुत्कारा एवं उपेक्षित यह वर्ग अब दोहरी मार सह रहा था। अपने लोंगो से अपमानित तो होता ही था दूसरी तरफ आक्रमणकारियों के द्वारा भी सताया जा रहा था। यह उसकी द्विगुपित पीड़ा थी। इस्लाम के आगमन के बाद सामाजिक रूप से नयी परिस्थितियां उत्पन्न हुई। मूर्तियों के लगातार ध्वंस तथा परंपरागत रूप से ईश्वरीय शक्ति के प्रतिक द्विज वर्ग की सामूहिक हत्या अपमान ने मूर्ति में देवता होने की आस्था पर प्रश्न लगा दिया। ब्राम्हणों की उच्चता और सर्व शक्तिमान होने पर भी प्रश्न लगा था। समाज की शक्ति के प्रतिक राजनितिक सन्ता भी अब उनके पास नहीं रह गयी थी जो उनके दमन का कारगर हथियार थे। परिणामस्वरुप समाज पुनवर्यव स्थापन की ओर बढ़ रहा था। निराशा के युग में सामान्य जनता जहाँ एक ओर भूत–प्रेत, पूजा–पाठ तथा अंधविश्वासों की शरण में पहुँच रही थी। इस परिवर्तनशील चिंतन ने ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर करारा प्रहार किया और जनता को फिर से नविन चिंतन पर विचार करने को मजबूर कर दिया। परिणामतः स्वामी रामानन्द को भी धार्मिक क्षेत्र में रूढ़िवादी बंधनों को ढीला करने पर विवश कर दिया।

इन्ही परिस्थितियों में संत कबीर दास एवं रविदास का प्रादुर्भाव हुआ। कबीर ने जहाँ 'निर्गुण पंथ' की स्थापना कर कमजोर एवं दलित वर्ग पर महान उपकार किया वहीं शोषण, अत्याचार और छुआछूत की भावना से ऊपर उठकर सबको एक ईश्वर की संतान होने का मान कराया।

"कबीर अपने युग के क्रन्तिकारी पुरुष थे उन्होंने अपनी प्रखर दृष्टि से यह जान लिया था कि इस वर्णवादी व्यवस्था में दुर्बल मनुष्य सुरक्षित नहीं है। ब्राह्मणो ने उसके सारे सुख–सुविधा के अधिकार छीन रखे थे। उन्हें सम्पति रखने का अधिकार न था, मंदिर में जाने का अधिकार न था, धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने का अधिकार न था। उच्च जातियों की सेवा करना ही उनका धर्म था। लोग उनकी छाया से भी बचते थे, वे अछूत थे। धर्म की ऐसी ब्राह्मणवादी व्यवस्था कबीर को मंजूर न थी। कबीर की नजर में वर्ण व्यवस्था के इस अंतर को धर्म का संस्थागत रूप ही उत्पीड़क था। क्योंकि दोनों धर्मों में ईश्वर प्राप्ति का मार्ग जिस पुरोहित वर्ग, धार्मिक ग्रंथों और रूढ़िवादीआचार–विचार से होकर जाता था, वह ईश्वरीय भक्ति को सबके लिए समान रूप से प्राप्य नहीं था। कबीर सवाल करते है कि क्या असमानता पर टिकी व्यवस्था का निर्माण खुद ईश्वर ने किया है? यदि ईश्वर ने किया है तो फिर इसमें एकरूपता क्यों नहीं? कबीर के गले यह बात नहीं उतरती क्योंकि यह असमानता पैदा होने के बाद थोपी गयी है। अगर यह व्यवस्था ईश्वर द्वारा रची हुई होती तो मनुष्य जन्म के साथ ही उसे लेकर पैदा होता"

जो पैं करता वरन विचारै।
तो जनमत तीनि डांडी किन सारे।।
उत्पत्ति व्यंद कहाँ थै आया। जोति धरी और लगी माया।।
नहीं को ऊँचा नहीं को नीचा। नाका व्यंद ताहि का सींचा।।
जे तू बांभन बभनी जाया। तौ आन बाट हवै काहे ना आया।।
जे तूं तुरक तुरकनी जाया। तौ भीतरी खतना क्यों ना कराया।।
कहे कबीर मछिम नहीं कोई। सो मछिम जा मुखि राम ना होय।।

कबीर दास प्रश्न करते हैं कि यदि ईश्वर खुद वर्ण का विचार करता तो मनुष्य को जन्म से ही वर्ण के अनुसार बनाता। मनुष्य जन्म कि एक विधि है। ईश्वर ने मनुष्य को ना ऊंचा बनाया है ना नीचा।

दलित चेतना के सन्दर्भ में कबीरः जबरीमल्ल पारख, पृष्ठ– 99

अगर ब्राह्मण जन्म से ही ब्राह्मण होता तो फिर वह भी उसी विधि से क्यों उत्पन्न होता जिस रूप में अन्य जाति के लोग उत्पन्न होते है। अगर मुसलमान जन्म से ही मुसलमान होता तो वह अपनी माता के पेट से ही खतना कराकर पैदा क्यों नहीं होता? एक प्रश्न वे और करते है कि यदि खतना कराने से मुसलमान होता तो औरतें तो मुसलमान हो ही नहीं सकतीं। कबीर की विवेकशील तर्क के सामने धार्मिक पुस्तकों की मान्यताएं ढह जाती हैः–

एक बूंद एकै मल–मूत्र, एक चाम एक गुदा।
एक जोति थैं सब उतपनां, कौने बाम्हन कौन सदा।।

मनुष्य की इस स्पष्ट दिखने वाली समानता को नकार कर उनमें धर्म और जाति–वर्ण के नाम पर भेद–भाव स्थापित करने के लिए जो जिम्मेदार है, कबीर उन सबका विरोध करते हैं। चाहे वह वेद ही या कुरान , मंदिर हो या मस्जिद।

कबीर दास जी के इन कार्यों को आगे बढ़ाने में जिस संत का नाम सर्वप्रथम आता हैं उनका नाम संत रैदास है। संत रैदास सम्पूर्ण मानव जाति विशेषकर अनुसूचित समाज के गौरव बोध के बार–बार अपनी जाति के नाम का स्मरण किया है। यह जरुरी भी था क्योंकि जिस समाज ने निम्न जाति के लोंगो को सदा हाशिये पर रखा, उन्हें नीची निगाहों से देखा, उनके आत्मगौरव को कुचला, और अश्पृश्य बनाकर छोड़ा, उनसे दया करुणा की उम्मीद भी क्या की जा सकती थी? ऐसे में अपने जातीय स्वाभिमान का गीत गण सर्वथा उचित ही था। संत रैदास ने न केवल अपने जातीय गौरव का गीत गया बल्कि अपने कर्मों से उन्हें समाज में उचित प्रतिष्ठा और सम्मान भी दिलाया। कबीर दास जी ने उनके विषय में सच ही कहा है–"संतान में रबिदास संत हैं"

"यो तो संतों की परंपरा में अनेक महात्माओं का नाम लिया जा सकता हैं किन्तु संत मत को अंतिम रूप प्रदान करने की क्षमता किसी में ना थी। उन्होंने अपने पहले से आती हुई नविन धारा के प्रभाव में सहयोग प्रदान किया। उन्होंने उसकी प्रारंभिक रुपरेखा तथा पहचान को स्पष्ट व्यापक रूप देने का कार्य किया। उन्होंने अपने विलक्षण प्रतिभा के अलोक में इसके वास्तविक रूप का निरीक्षण किया तथा इसके महत्व द्वारा पूर्ण प्रभावित होकर अपनी अपूर्व शैली की सहायता से सर्व साधारण में काया पलट उपस्थित कर दिया। संत रबिदास की इस देन को अनेक उत्तरवर्ती प्रायः सभी संतों ने स्वीकार किया हैं और इसी कारन उन्हें बहुत से लोग मानवता वादी संत कहलाने में ही झिझकते हैं। संत काब्य परंपरा की निर्गुण साधना में मानवीय स्वर संत रबिदास में कूट–कूट कर भरे हुए थे। अंतर यही हैं कि संतों कि वाणी में तेवर की विभिन्नता है। संत रबिदास ने संत मत को पूरी तरह से निभाया है।"

 ISSN : 3049-3463 (Online)

संत रैदास ने कबीरदास की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उनकी सामाजिक चेतना की लौ को कभी मंद नहीं होने दिया। हा, यह बात जरूर है कि कबीर की वाणी में जो जोश और तेवर दिखलाई पड़ते हैं वह यहाँ मंद हैं। कबीर के डांट–फटकार की जगह कवि रैदास ने संयम का परिचय दिया है। संत रैदास ने अपनी वाणी में निचली जातियों में आत्मविश्वास की भावना को जगाने का काम किया है। उन्होंने लोंगो को सात्विक जीवन जीने का उपदेश दिया। समाज सुधार के लिए उन्होंने कथनी और करनी के भेद को मिटा दिया। उन्होंने परनिंदा त्याग, अहंकार का त्याग करने का उपदेश दिया। वे कहते है कि जाति भेद निरर्थक है :–

जाट–पांत के फेर मोहि, उरझि रहै सब लोग।
मानुषता को खात हुई, रबिदास जात का रोग।।

1. संत काब्य परंपरा में रबिदास हरिओम फुलिया, गुरु रबिदास वाणी – पृष्ट – 376 उन्होंने जन्म के आधार पर मनुष्यों के बीच किसी भेदभाव को नहीं माना। उनका स्पष्ट मत था–

रबिदास जन्म के कारेने होत ना कोउ नीच।
न कूं नीचा करि डारी है, वोछे करम की कीच।।

संत रैदास ने वर्ग भेद, जाति भेद और छुआछूत के सख्त खिलाप थे। उन्होंने अपनी वाणी के द्वारा यह भरसक कोशिश की कि यह यह भेदभाव मिटे। वे जानते थे कि इसे मिटाना इतना भी सरल नहीं है। इसलिए उन्होंने इसके विरुद्ध पहले संघर्ष किया। इस संघर्ष के दौरान उन्हें अपमानित और प्रताड़ित होना पड़ा। वे जानते थे कि जाति, वर्ण और वर्ग के भेदों को मिटकत ही सुखी और सुन्दर समाज बनाया जा सकता है। इस प्रकार से मानवीय हित को अपनी बाणी को मूलाधार बनाया। जाति–पांति की दृष्टि से मनुष्य से घृणा रैदास के ह्रदय को ठेस पहुँचता था। भारत का इतिहास साक्षी है कि इस जाति–पांति के बंधनों में जकड़े रहने के कारण देश खंड–खंड हो गया था।

ऊंच–नीच की व्यवस्था ने लाखों लोंगो को उनके सामान्य अधिकारों से वंचित कर रखा है। नीची जाति वाले लोंगो को लोग पशुओं से भी हेय दृष्टि से देखते है। आज यह स्थिति यथावत दिखती है। इससे पता चलता है कि समाज को आज भी संतों के बताये हुए मार्ग पर चलने की आवश्यकता है। समाज आज भी समरस नहीं बना है। इसलिए संतों की वाणी आज भी समाज के लिए प्रासंगिक है। जबतक समाज में समरसता नहीं आती विषमता की खाई चौड़ी होती रहेगी।

"संत रैदास ने अपनी वाणी के माध्यम से जिस दर्शन का बखान किया है। उन्होंने समाज में समता और एकता का संदेश तो दिया ही है, इसके अतिरिक्त कर्मण्य जीवन में कथनी करनी में एक्य का महत्त्व भी स्थापित किया है। मध्ययुगीन कवियपन में रबिदास का समाज की पुकार के प्रत्युत्तर में सामाजिक समता के रूप में निनादित हुआ है। रबिदास जी कहते है 'कर्म के प्रति निष्ठा और ईमानदारी होनी चाहिए। वे कर्म विमुख होकर संसार त्यागकर भक्ति–मार्ग अपनाने का सन्देश देते हैं। वे समाज के छोटे कर्म के द्वारा उदर–पूर्ति करने वाले व्यक्ति के जीवन से उदाहरण ग्रहण करते हैं–

ISSN : 3049-3463 (Online)

रबिदास सुकरमन करन सै, नीच–ऊँच हो जाय।

करई कुकरम जो ऊँच भी तो यहाँ नीच कहलाय।।

रबिदास जी की वाणी में लोकतत्व प्रमुख है।

समाज का दायरा बहुत व्यापक होता है उनमे विभिन्न धर्मों के लोग इकठ्ठे रहते है, जिनमे मत–मतांतर, जाति–पांति, धर्मगत भेड़ों के अतिरिक्त रीती–रिवाज, अनुष्ठान, खान–पान, अचार–व्यवहार संबंधी भिन्नता रहती है। रविदास की वाणी में उन सभी सामाजिक बुराईयों से जुड़े अचार–विचार की निंदा की गयी है जिनसे समाज का अहित होता है। मांसाहार और मदिरापान के लिए उन्होंने ऐसा कहा है–

रविदास मदिरा का पीजिय जो चढ़े उतराय।

नींव महारस पीजिए, जो चढ़े नहीं उतराय।।"

इसी प्रकार उन्होंने मिथ्याडम्बरो, भेदभाव, ऊँचनीचआदि कितने ही लोकाश्रित तथ्यों से होने वाली सामाजिक बुराईयों की ओर संकेत किये है। ऐसे स्थलों पर उनकी वाणी में लोक–तत्व का अद्भुत समन्वय मिलता है। अपने समकालीन समाज में प्रचलित मिथ्या तत्वों को मिटाने के लिए रविदास जैसे संतों ने लोक–सत्य और मानवीय–सत्य को एक दूसरे के सामने ला खड़ा किया। उनके चिन्तन और उनकी प्रासंगिकता आज भी महत्वपूर्ण है –

ब्राह्मण खतरी वेस सूद रविदास जनम ते नाहिं।

जो चाहई सुबरन कऊ, पावइ करमन माहिं।।

आज देश के आध्यात्मिक धरातल पर हम देखते है कि विभिन्न धर्मों को मानाने वाले अपने–अपने इष्ट डिवॉन को लेकर आपस में झगड़ते रहते हैं। इससे आपसी मेल मिलाप नष्ट होता हैं। इस संदर्भ में रविदास जी की वाणी और विचार आज भी उपयोगी हैं।

रविदास जी ने समाज संत रविदास की वाणी में सामाजिक चेतना–डॉ० हवा सिंह

रविदास वाणी, पृष्ठ – 103

समता और एकता लेन के लिए महजबों, वर्गों एवं जातियों को एक सूत्र में जोड़ने का काम किया। उनके अनुसार परमतत्व मात्र एक हैं। इस संदर्भ में उन्होंने कहा हैं –

आदिह एक अंत पुनिसोई, मधि उपाय करूँ कैसे,

अहै येकि पै भरम दूजों, कनक अलंकृत जैसे।।

आधुनिक युग में श्रम की बात कही जाति हैं। संत कवियों ने इसके महत्त्व को पहचाना था। आज के साधु–महात्माओं की तरह वे दूसरों के श्रम पर निर्भर न थे। संत रविदास

जी खुद पशुओं के शरीर से चमड़ी निकलते थे, उसे धोते और सूखते थे और जूते गांठते थे। इसी से उनके घर का गुजर–बसर होता था। इनका दृढ विश्वास था कि शारीरिक श्रम न करके, निठल्ले बनकर भिक्षावृति करना अनुचित है। इसलिए रविदास जी की वाणी में ऐसी बहुत सी बातें है जो आधुनिक युग में

भी अपना महत्व रखती है आधुनिक युग में अनेक समाज सुधारक एवम राजनितिक विद्वानों ने श्रम के सिद्धांत को स्वीकार किया है।

संत रैदास ने परम्परागत मूर्ति पूजा का भी विरोध किया था। उनका कहना था किजो ईश्वर सारे संसार का कर्ता सर्वव्यापी है, संसार के पंचतत्व में जो सदा विराजमान रहता है उसकी प्रतिनिधि यह पत्थर कि मूर्ति नहीं हो सकती। इस मूर्ति में यदि मनुष्य को तारने की शक्ति होती तो वह स्वयं टिर (मुक्त) जाती रैदास कहते है कि यह सब सोचकर मैंने मूर्ति पूजा का परित्याग कर दिया, एक जन्म स्थल पर मूर्ति की परीक्षा हेतु शर्त रख देते हैं कि यदि मूर्ति में प्रभु हैं वह कम से कम तैर तो सकती ही हैं किन्तु वह मूर्ति स्वयं डूब जाती हैः–

"पाती तोड़ै पूजी रचावै, तारन तरन कहै रे।
मूरति माहि बसै परमेसुर, तो पानी माहि तिरे रे।। "

रविदास वाणी– पद्द– 73

"रैदास ने तत्कालीन युग में प्रचलित तथा परम्परा में व्याप्त धर्म के वही आडम्बर मूर्ति पूजा तथा अंधविश्वासों का बड़े तार्किक – मार्मिक ढंग से विरोध किया हैं, किन्तु यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक हैं कि रैदास को परम्परा से मिलने वाले प्रकाश को साभार स्वीकार भी करते हैं। वेद–पुराण–भागवत परम्परा से जो भक्ति भावना मिली उनके प्रति कृतज्ञ हैं। पौराणिक कथाओं में आये अनेक भक्तों के उदहारण उनके पथ को प्रेरणा दे रहे हैं। वास्तविकता यह हैं कि रैदास पूर्ण–रूपेण एक भावप्रवणत किन्तु विवेकशील साधक एवं भक्त थे। कोई पूर्वाग्रह या प्रताड़ना उनकी प्रतिक्रिया नहीं बन सकती थी। उन्होंने सदा ही विवेक के आधार पर ग्रहण तथा परित्याग को प्राथमिकता दी। रैदास वाह्य आडम्बर, कर्मकांड, मूर्तिपूजा व दिखावटी रूप पर अविश्वास करते थे। धर्म के मालिक स्वरूप आभ्यांतरिक साधना और जीवन की पवित्रता पर प्रयाप्त बल देते थे। रैदास ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा हैं कि जिस व्यक्ति को काम क्रोधादि कभी नहीं सताते वह भक्त स्वयं ईश्वर का स्वरूप हो जाता है। उनके अनुसार धर्म के वाह्य आडम्बर तथा कर्मकांड के स्थान पर धर्म के वास्तविक रूप स्वरूप और सत्य स्वरूप को पहचानना चाहिए। संत रैदास के अनुसार धर्म का वास्तविक स्वरूप व्यावहारिक जीवन में धर्म के सिद्धांतों को उतरना है जिसका स्पष्ट्र तातपर्य सम्पूर्ण अवगुणों का परित्याग तथा एक संत जैसे शुभ लक्षणों एवं गुणों का जीवन में विकास करना है।"

संतों उपन्न भक्ति नाहिं।
जब लग सत रज तम पांचों गुण व्यापत है या माहिं।
सोई अंतर करि हरि सूं अपमारग कूं आनै।

संत रैदास– योगेंद्र सिंह, पृ०– 66

काम–क्रोध मद लोभ की पलपल पूजा ठानै। सत्य स्नेह इष्ट अंग लागै, अ स्थल अ स्थल खेलै। जो कुछ मिले आन आखत त्यूं सूत दारा नहीं मेलै। हरिजन हरि बिन और न जानै आन तन त्यागी। कह रैदास सोईजन निर्मल निसि दिन निज अनुरागी।

रैदास ने मानव मात्र की एकता पर बल दिया है। उन्होंने जीवन में अनेक कष्ट उठाये किन्तु सत्य के मार्ग पर सदा डटे रहे। संत कबीर ने उन्हें साधना में रविदास संत कहकर उनकी महानता को प्रमाणित किया है। संत रैदास की वाणी सहज, सुबोध और सरल थी। उनकी वाणी में एक अद्‌भुत सह– सामंजस्य ठा, जिसमे भारतीय संस्कृति की बुनियादी खूबियां दृष्टि गोचर होती है। उन्होंने स्वतंत्रता, एकता और भाईचारे के प्रति आवाज उठाई। उन्होंने निरंतरता ,बहुलता और पुनःरचनात्मकता पर जोर दिया। हर युग में परिवर्तन का सार अपनाते हुए उन्होंने निंरतरता पर बल दिया। परम्पराओ को ज्यों का त्यों न मानकर आत्म निरिक्षीण और पुनःगठन की वकालत की। हमारे राष्ट्रीय संस्कृति में ये खूबियां किसी खास काल या कुछ वर्षों में नहीं अर्जित की है वरन ये हमारे भारतीय संस्कृति की विशेषताएं हैं। ये किसी खास जाति या धर्म की देन नहीं हैं। भारतीय समाज के स्वाभाव और भौतिक संसाधनों के परस्पर द्वन्द, अंतःक्रिया और मिश्रण का यह फल है। जिस प्रकार उनके विचारों में मौलिकता है उसी प्रकार अनेक साहित्य में भी मौलिकता है। उन्होंने भक्ति और धर्म के क्षेत्र में सामान अधिकार और सामाजिक समानता की बात की है। रैदास की वाणी में कर्म की प्रधानता का संदेश है। उनकी मान्यता है कि जाति से बुरा व नीच कोई और नहीं होता, अपितु कर्म के अनुसार मानव के गुणों एवं अवगुणों की पहचान होती है। उन्होंने समस्त मानव समाज को एक ही जाति माना है।

रैदास वाणी, पद– 99

संत रैदास अन्यन्त विनम्र औरमधुर स्वभाव वाले महात्मा थे। वे कथनी और करनी में कोई भेद नहीं जानते थे। वह जिस युग में रहकर अपनी बात कह रहे थे वह घोर अशांति और अव्यवस्था का युग था। उस समय की सामाजिक अव्यवस्था सोचनीय थी। निचले स्तर को मणि जाने वाली जातियाँ अत्यंत दुखी थी।उनकी दुर्वस्था देखकर रैदास की आत्मा कलपती थी। उन्होंने अपनी वाणी को इसका विषय बनाया।

संत रैदास ने मानव और मानव के बीच प्रेम और सौहार्द का सूत्र आरम्भ किया उन्होंने एक ऐसे मानव धर्म की बात चलाई जिसमे मनुष्य और मनुष्य के बीच कोई अंतर न हो। उन्होंने मनुष्य की एक जाति और एक धर्म माना मानव जाति और मानव धर्म। उन्होंने सधी–सीधे शब्दों में सदाचार की बातें कही। संत रैदास ने अपने जीवन में जो कहा उसे ही अपने जीवन में उतारा। मनुष्य को मनुष्य का गौरव प्रदान करना है रैदास जी के जीवन अभीष्ट था। उन्होंने धर्मों की मूल्य एकता में अपना विश्वास व्यक्त किया। उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था के निस्सारता पर प्रश्न खड़े किये–

जात–जात के फेर मोहिं, उरझि रहे सम लोग।
मानुषत के खात हई, रविदास जात का रो।

"रैदसी जी ने मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति के प्रत्येक पहल में प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में प्रतीयमान बनाया। मानवीय आचरण के सभी पहलुओं, सभी मानवीय मूल्यों में लोकहित की खोज की। उनकी वाणी में लोकतत्व के संचार की पृष्ठभूमि के रूप में समकालीन व्यवस्था से अर्जिर प्रभावों को मूल्यांकन करें तो उसमे लोकतत्व के अनेक स्थूल व सूक्ष्म रूप दिखलाई पड़े।" उनके युग में तत्कालीन व्यवस्था का रूप

 ISSN : 3049-3463 (Online)

सामंत सा ही था। लोक जीवन राजा का स्वरूप ईश्वर तुल्य था इस लोक निहित अवधारणा से रैदास भलीन–भांति परिचित थे। अपनी भक्ति के साथ इस लोक स्थिति को उन्होंने जोड़ा और पाया की प्रभु की प्रतिछाया राजा की अपेक्षा आदि सेवा, अपनत्व का रिश्ता स्वयं प्रभु से जोड़ा जाय तो उस प्रभु की निकटता सहज रूप से प्राप्त हो सकती है। रैदास यहाँ यही निष्पादित करना चाहते है कि प्रभु चरणों कि निकटता आनंद और महत्त्व राजा कि सत्ता से किस भी प्रकार न्यूनतर नहीं है। इस रहस्य को उन्होंने लोक जीवन से एक दृष्टान्त लेकर सहज ही सुलझा दिया। इस सन्दर्भ में ऐसे कितने ही उदहारण उन्किओ वाणी से जुटा सकते हैं जो लोकतत्व का आधार बनाकर प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसे उदाहरणों का एक सववेत रूप यहाँ प्रस्तुत है (क) हमरा कहा करे ,संसार मेटि जाति हुए दखाटी

(ख) प्रभु ने जानीजै जन तो सुआमी

(ग) ऐसा चाहो राज मैं, जहाँ मिलै सबन को अन्न। छोटा बड़ा सम बसै, रविदास रहै प्रशन्न।।"

ऐसे उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कि रैदास की वाणी पर तत्कालीन व्यवस्था जुड़ी लोकात्मा कितनी प्रामाणिक है। भक्त होते हुए भी रैदास कितनी गहराई से लोकनकना से जुड़े हुए थे इसका प्रमाण इन पंक्तियों में मिल जाता है। वे सबके लिए अन्न की उपलब्धि चाहते थे, छोटे–बड़े के भेद को समाप्त करना चाहते थे, वे क्षण के लिए लोक विमुख नहीं होना चाहते थे। इसलिए उन्होंने दरिद्रता पर हसने वाले के संदर्भ में कहा है–

दारितु देखि समभ हँसे ऐसी दशा हमारी। देखने में सामान्य लगने वाले इस कथन में कितना बड़ा लोक सत्य छिपा हुआ है–

माधवे। तुम न तोरहू तो हम न तोरहिं। रैदास जी ने कर्म के प्रति निष्ठां और ईमानदारी पर बड़ा बल दिया है। वे कर्म विमुख

1 संत रैदास के काव्य में मानवीय प्रसंगः राजबाला मैन गुरु रविदासः वाणी एवं महत्त्व, पृष्ठ– 318

2. रावदास वाणी – पृष्ठ– 16

होकर, संसार त्यागकर भक्तिमार्ग अपनाने का सन्देश नहीं देते हैं। इसके विपरीत समाज के छोटे कर्म के द्वारा उदर पयर्ति करने वाले व्यक्ति के जीवन से उदाहरण ग्रहण करते हैं –

रविदास सुकरमन करन सो, नींच ऊंच हो जाय,
करइ कुकरम जो ऊंच भी तो यहाँ नीच कहलाय।

सच्चा लोक सेवक सच्चे कर्म को पहचानता हैं। इसलिए रैदास जी ने छोटा–और बड़ा में कोई भेद नहीं बतलाया। छोटा या बड़ा मनुष्य अपने कर्मों से होता है।

रैदास की वाणी में लोकतंत्र का प्रमुख आधार है स्वयं उनका समाज। समाज का दायरा बहुत व्यापक होता है। उसमें विभिन्न धर्म और जाति के लोग रहते है जिनमे मत–मतांतर होना स्वभाविक है। इनके अतिरिक्त खान–पान, रीती–रिवाज, अचार–विचार संबंधी भिन्नता भी बानी रहती है। रैदास की वाणी

में सामाजिक बुराईयों से जुड़े कितने ही लोकतत्व उद्धरणों से भरे पड़े है। मांसाहार, मदिरापान आदि के गृहीत रूप को वे भक्ति सुधा समक्ष रखकर एक बड़े सत्य की ओर संकेत करते है –

मीन पकरि फांकियो अरु कांचियों रांधि किया बहुवामी खंड –खंड करि भोजनु कीनो तउ न विसारियौ पानी।

इसी प्रकार

रविदास मदिरा का पीजिय जो चढ़े उतराय
नीव महारस पीजिय जो चढ़े नहीं उतराय।

इस प्रकार रैदास जी ने एक क्षण के लिए भी मानवता के धर्म को झोलन होने नहीं दिया है। वास्तव में उनके समग्र चिंतन में लोकोन्मुख भाव विस्तार है। उनकी वाणी में भावानुभूति की प्रखरता और अज प्रवाह है। उनके काव्य का संसार भावात्मक है। उन्होंने तात्कालिक समाज को आबिल होने से बचा लिया। वे अद्विितीय व दूरदर्शी संत ये जो जीवन ईश्वर व संसार को अत्यंत समीपतम स्थिति में देख सके। उनकी जीवन दृष्टि विभिन्न पक्षों से राजी हुई थी। मनुष्य के जीवन के हर पहलू पर उन्होंने अपनी बिहंगम दृष्टि डाली जिनसे मानवतावाद, समाजवाद, समन्वयवाद, विश्व वंधुत्व और करुणावाद जैसे दर्शन को वे अंगीकार करते है –

1. साम्यवाद– संत रैदास जी ने विशृंखल तथा बिखरे हुए समाज को एक सत्र में बांधने का बीड़ा उठा लिया। उन्होंने पराधीन व्यक्ति को हीन ग्रंथि से ग्रस्त। उन्होंने अपमान और तिरस्कार को अमृत समझकर पी लिया और पराधीन मनुष्यों के ह्रदय में अलख की ज्योति जलाई। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा–

पराधीनता पाप है जान लेहु रे मीत।
रैदास पराधीन को सब ही सबके रीझ।।

2. मानवतावाद– संत रैदास जी ने मनुष्यों को हीन भावना से उठकर मनुष्य होने का भान कराया। उन्होंने एक ऐसी आत्मनिष्ठा का प्रवाह प्रारम्भ किया जिसमे मानवता की अनुबंध और अभिव्यंजना थी। जिनसे सत्य का मुक्त चिंतन था और सामाजिक क्रांति का संदेश भी। उन्होंने समता, स्वतंत्रता एवं सहिष्णुता का संदेश देकर दलित, शोषित और पीड़ित मानवता को सहारा दिया उनमे आशा और विश्वास का संचार किया –

जनम जात के छोड़ करि करनि जान पर धाय।

3. समन्वयवाद– संत रैदास ने बराबर जनकल्याण और समन्वय का संदेश दिया। उन्होंने एक सहज साधन पद्धति के रूप में सहज प्रभाव छोड़े, संयम, धैर्य और मानवीय करुणा के बल पर बड़ी–बड़ी विभाजक रेखाओं को उन्होंने मिटाया। उनके भावानुकूल भाव को समझने की आवश्यकता है –

सब मैं हरि है हरि मैं सब है हरि अपनौ जानि जाना।
अपनी आसि साषि नहीं दूसर, जनन हार सायना।।

 ISSN : 3049-3463 (Online)

रविदास उपजइ साम इक नूर ते ब्राह्मण मुल्ला सेख।
सम को करता एक है , सम कूं एक ही पेख।।

4. विश्ववन्धुत्व और करुणावाद–

संत रैदास जी ने बहुजन समाज में अत्याचारी के प्रति भी प्रेम तथा बंधुत्व के व्यवहार की शिक्षा दी है। इस प्रकार शोषक तथा शोषित दोनों वर्गों में सौहार्द को स्थान मिला है। उन्होंने करुणामयी वातावरण बनाने पर जोर दिया। जिसकी शीतल छाया तले सभी मनुष्य निर्भय हो आराम करें। उनकी वाणी में प्रेम और करुणा की झलक मिलती है, विश्व वन्धुत्व का सन्देश मिलता है–

रविदास इक ही नूरते निमि उपजन्यों संसार।
ऊंच नीच किहि विध भये ब्राह्मण अरु चमार।।
अथवा
रावदास जी कूं मारकर कैसौ मिलहि सुखाय।
पीर पैगम्बर औलिया कोई न कहई समुदाय।।

5. जातिवाद के संदर्भ में –

रैदास जी जातिवाद के कटटर विरोधी थे। उनका कहना था कि जातिवाद एक भयंकर रोग है। इसके कारण मनुष्य–मनुष्य को इन्सान नहीं समझता इसे दूर करना चाहिए। उनके अनुसार एक जाति में अनेक जातियां उसी तरह पायी जाती है जैसे केले के तने में अनेक परतें। जबतक जाति–पांति का भेद नहीं समाप्त होता तबतक मनुष्य एक नहीं हो सकता। इसी कारण उनके शिष्यों में सभी जाति धर्म के लोग थे। झालाबाड़ के राजा की पुत्री रतनकुंवारी तथा मीराबाई उनकी शिष्यां थी। ऊनि इसी श्रेष्ठता को देखकर काशी के विद्वान, पंडित उनके विरोधी हो गए थे। अंततः सभी ने उनकी श्रेष्ठता स्वीकार की –

गरीब निवाज गुसैया मेरे माथे तिलक परै।
नीचहिं ऊंच करे मेरा गोविन्द काहू ते न डरै।।

6. धार्मिक एकता तथा देश भक्ति –

संत रैदास जी ने समस्त धर्मों में समन्वय स्थापित करते हुए सभी आस्थाओं तथा धार्मिक विश्वासों का एक केंद्र–विन्दु माना। उन्होंने लोंगो को सर्वसत्ता सम्पन्न ईश्वरीय शक्ति का बोध कराया और भ्रमित जन साधारण को दिशा निर्देश दिया कि आस्थाओं और मान्यताओं का अलग–लग मार्ग हो सकते हैं परन्तु समस्त मार्गों की मंजिल एक है अर्थात मत–मतान्तरों का धेय ईश्वर प्राप्ति है, भले ही उन्हें अनेक नामों से जाना जाता है।

संत रैदास जी ने देशभक्ति को प्राथमिकता दी और अपने गुरु द्वारा बताये अभियान को पुरे देश में फ़ैलाने का काम किया। उन्होंने जन साधारण में देश प्रेम की भावना फूंकने का अथक प्रयास किया। भारतवासियों में भावात्मक एकता की स्थापन हेतु उन्होंने अपना सर्वस्य न्योछावर कर दिया।

7. ईश्वर साधना के क्षेत्र में रैदास का योगदान–

संत रैदास के विषय में इतना जान लेना आवश्यक है कि न वह कोई विधिवत दार्शनिक थे और न कोई बड़ा चिंतक। यही बात सभी सब्तों पर लागु होती है। प्रायः सभी सब्त मूलतः भक्त थे और अपने सामने आने वाली समस्याओं के प्रति जागरूक एक साधारण मनुष्य। प्रायः सभी संत निम्न जाति से ही आए थे और अशिक्षित थे। संतों का ज्ञान उतना अध्ययन से नहीं जितना सतसंग, पर्यटन तथा परंपरा से प्राप्त था। इसलिए उनके विचारों में कभी–कभी तारतम्य खोजना पड़ता है। उनकी विचारधारा में एकसूत्रता है किन्तु उनकी अभिव्यक्ति में कहीं–कहीं संकुलता दिखलाई पड़ती है। इसी कारण विभिन्न समस्याओं पर उनका कोई दार्शनिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।

संत रैदास का भी पृथक विवेचन ग्रंथ प्राप्त नहीं है, हम उनकी वाणी से ही उनकी साधना पद्धति के विषय जान सकते हैं।

"ब्रह्म के विषय में जानने की उत्कंठा सदा से मानव के मन में रही हैं। अपने चिंतन के आरम्भ में उसने कभी प्राकृतिक व्यापार एवं घटनाओं में किसी अदृश्य सत्ता का हाथ देखा तो कभी अलौकिक सत्ता पर ही अपनी कल्पनाओं को आरोपित किया" इस आरोप के पश्चात् भी चिंतनशील मस्तिष्क को कुछ समय के लिए ही संतोष प्राप्त होता है, फिर उसकी जिज्ञासा पुनः चिंतन में लीन हो जाती है और जितना जितना चिंतन हुआ उतना–उतना ही आगे जाते हुए मनीषियों की असमर्थता की घोषणा करनी पड़ी।"[2]

प्रत्येक वर्णन अपूर्ण, अधूरा अतः गलत ही रह सका, इसलिए कहीं हारकर उस सत्ता को उपनिषदों में निति कहा गया है। कहीं उसको इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चेतना आदि से सबसे परे कहकर तद्द विषयक चिंतन में असमर्थता की घोषणा की गयी।"

"प्रायः सभी अभिव्यक्तियाँ परस्पर विरोधी दिखलाई पड़ती है। परस्पर विरोधी सी दिखने वाली वर्णन शैलियां जिन्हे निराकार, साकार, निर्गुण, सगुन आदि नामों से अभिहित किया जाता है। जब साधक उस पर ब्रम्हम में सम्पूर्ण गुणों का आरोप कर ससर तथा सम्पूर्ण भूत को उसी से अद्भुत मंटा है तब वह सगुणवादी होता है। जब सम्पूर्ण ब्रम्ह्म में एक ही सत्ता दृष्टिगोचर होती है तब उड़ स्थल साकारवाद का जन्म होता है। जब साधक या चिंतक इसे मानकर भी यह कहता है कि वह तो यह भी नहीं है, इससे परे है, यह सम्पूर्ण संसार अनुभूति का क्षेत्र है तो निचला स्तर उससे भिन्न है, तब इस परात्पर के साथ निरकारवाद की पूर्व पीठिका प्रस्तुत हो जाती है और जब सबकुछ वह और वहीँ रह जाता है तब अद्वैतवाद की अनुभूति होती है।"

ISSN : 3049-3463 (Online)

संदर्भ ग्रंथः–

1. दर्शन– दिग्दर्शनः राहुल सांस्कृतायन, पृ०– 386
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास– माइक डानल (अंग्रेजी) पृ०– 69
3. भगवतगीता– पृ०– 42
4. संत रैदास– योगेंद्र सिंह, पृ०– 48
5. संत साहित्य लोकमंगलः ओम प्रकाश त्रिपाठी पृ०– 58
6. कवितावली– तुलसीदास, उत्तरकाण्ड, छंद– 97
7. संत साहित्य और लोकमंगलः ओम प्रकाश त्रिपाठी, लोकभारती प्रकाशन, पृ०– 51
8. दलित चेतना के सन्दर्भ में कबीरःजबरीमल्ल पृ०– 99
9. संत काव्य परंपरा में रविदास : हरिओम फुलिया, गुरु रविदास वाणी पृ०– 376
10. रविदास वाणी पृ०– 103
11. रविदास वाणी पृ०– 73
12. संत रैदास– योगेंद्र सिंह पृ०– 66
13. रैदास वाणी पद– 99

❐